ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBBIL04292
RNI REG. NO. UPBBIL/2014/66218 **PP. NO.- 142-146**

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-I, Issues-16 YEAR- June. -2020

बौद्ध धर्म में महासांघिक विचारधारा का उद्भव एवं विकास

ज्योति राय

शोध अध्येत्री, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एंव पुरातत्व विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय– हरिद्वार,(उत्तराखंड), भारत

Received- 28.04.2020, Revised- 03.05.2020, Accepted - 07.05.2020 E-mail: rjo3744@gmail.com

सारांश : *जब हम विश्व के धर्मों का अवलोकन करते हैं तो यह देखते हैं कि उनका विभाजन भिन्न–भिन्न सम्प्रदायों के रूप में दिखायी देता है। बुद्ध ने अपने ज्ञान को उपदेश के माध्यम से लोगों तक प्रसारित किया। ताकि मानव स्वयं को पहचान कर आध्यात्मिक मार्गों पर चल सके, अपनी वास्तविकता से अवगत हो सके एवं अध्यात्मिक प्रगति कर सके। बुद्ध के विचारों को उनके अनुयायियों ने धर्म रूप प्रदान किया। बौद्ध विचारधारा के अनुसार संसार की सभी वस्तुएँ सागर के जल के समान गतिशील है। विश्व में कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है जो परिवर्तनशील न हो। परिवर्तन होना विश्व की लाक्षणिक विशेषता है।[1] इस बौद्ध विचार को बौद्ध धर्म के विकास के सन्दर्भ में देखा जा सकता है। जो निरन्तर परिवर्तनशील रहा और कालान्तर में विभिन्न सम्प्रदायों में विभक्त हुआ। यह परिवर्तन केवल बौद्ध धर्म में नहीं था, बल्कि विश्व के लगभग सभी धर्म सम्प्रदाय के साथ परिवर्तित हुए। धर्म के इतिहास को भी इस बात का साक्षी माना गया है। इसाई धर्म का विभाजन प्रोटेस्टैंट और कैथोलिक मतों में, इस्लाम का विभाजन सुन्नी और शिया मत में, जैन धर्म का विभाजन दिगम्बर तथा श्वेताम्बर सम्प्रदायों में उक्तकथन की प्रमाणिकता की ओर संकेत करता है।[2] अन्य धर्मों की तरह बौद्ध धर्म में भी यह मिलता है। सर्वप्रथम बौद्ध धर्म के दो सम्प्रदाय हुए, महासांघिक और स्थविरवादी। आगे चलकर लगभग बौद्ध धर्म 18 सम्प्रदायों में विभक्त हुआ। इस शोध पष का विषय महासांघिक सम्प्रदाय का उद्भव एवं विकास का अध्ययन करना है।*

कुंजीभूत शब्द– अवलोकन, सम्प्रदायों, माध्यम, आध्यात्मिक, वास्तविकता, परिवर्तनशील, इतिहास, विभाजन।

बुद्ध निर्वाण प्राप्ति के लगभग सौ वर्षों के पश्चात् द्वितीय बौद्ध संगीति का आयोजन कालाशोक के शासन काल में वैशाली में सम्पन्न किया गया था। द्वितीय बौद्ध संगीति का बौद्ध साहित्य में अनेकशः उल्लेख प्राप्त होता है। महावंश, महावस्तु अथवा अवदान साहित्य प्रथम भाग, आर्यमंजुश्रीमूलकल्प, चुल्लवग्ग के सप्तशतिकास्कन्ध में एवं चीनी बौद्ध साहित्य में इनके विवरण उपलब्ध है। इस संगीति में 700 भिक्षुसंघ के सदस्य के रूप में सम्मिलित हुए। इस संगीति में कुछ नियमों को लेकर भिक्षुओं के मध्य मतभेद उत्पन्न हुए, जिस कारण बौद्ध धर्म दो अलग–अलग सम्प्रदायों में विभक्त हुआ।

(1) विनय में किसी प्रकार के परिवर्तन न मानने वाले कट्टरपन्थी भिक्षु स्थविरवादी कहलाये।[3]

(2) नियमों में समय के साथ परिवर्तनवादी संशोधक भिक्षुओं की मण्डली संख्या में अधिक होने से महासंघ के कारण महासांधिक कहलायी।[4]

आगे चलकर महासांधिक सम्प्रदाय का भी उप–शाखाओं में विभाजन प्राप्त होता है।[5]

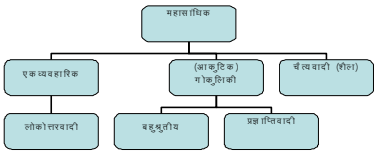

चित्र 1: महासांधिक का वर्गीकरण

यह सामान्यतः माना जाता है कि महासांधिक egk, ku d si gY clt c¨usokY FA[6] विनय के नियमों में संशोधन एवं परिवर्तन के साथ कुछ वर्षों के पश्चात् ही इस सम्प्रदाय की शक्ति एवं लोकप्रियता में वृद्धि हुयी। महासांधिकों की यह मान्यता थी, कि बुद्ध मनुष्य नहीं अपितु लोकोत्तर थे। वे अपरिमित रूपकाय को धारण कर सकते थे, अर्थात् अपनी इच्छानुसार भौतिक, अभौतिक शरीर को एक साथ धारण कर सकते थे।[7] प्रारम्भ में बुद्ध को मानवीय रूप में स्वीकार किया गया था, किन्तु श्रद्धातिशय तथा उनके प्रत्यक्ष–दृष्ट अपूर्व गुणों के दर्शन करके उनके व्यक्तित्व को अलौकिक समझना आश्चर्यजनक न था।[8] महासांधिक मतानुसार मानव को सिर्फ ज्ञान प्राप्त कर अर्हत बनना सर्वोत्तम स्थिति नहीं है। बल्कि सभी व्यक्ति को बुद्धत्व प्राप्ति का प्रयत्न करना चाहिए। बुद्ध ने जिस प्रकार से अपने उपदेशों में नियमों (सूत्रों) की व्याख्या की है वे अपने आप में परिपूर्ण है। उनके प्रत्येक उपदेश परमार्थ सत्य के विषय में है। परमार्थ सत्य शब्दों के द्वारा अवर्णनीय है।[9] बुद्ध में अलौकिक शक्तियाँ निहित थी जिससे वह अनेक रूप या जन्म धारण कर सकते थे। जातक कथाओं एवं स्थापत्य कलाओं में बुद्ध द्वारा प्रदर्शित चमत्कारों का वर्णन प्राप्त होता है। महासांधिक सम्प्रदाय की एक शाखा अन्धकों का

अनुरूपी लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-I, Issues-16 YEAR- June. -2020

मानना है कि बुद्ध और अर्हत्त दोनों को एक कोटि में नहीं रखा जा सकता है। इनमें अन्तर इतना है कि बुद्ध सर्वकारण हैं अर्थात् उनका ज्ञान प्रत्येक वस्तु के विषय में विस्तृत, व्यापक तथा परिपूर्ण है परन्तु अर्हत का ज्ञान एकांगी एवं अपूर्ण होता है।[10] महासांधिकों को स्वीकार महादेव की पाँच वस्तुओं से स्पष्ट होता है कि मूल महासांधिक अर्हत की मुक्ति की अवस्था को नहीं मानते थे।[11] महासांघिक सम्प्रदाय अलौकिक धर्म को जन्म और मृत्यु से भी विलक्षण मानते थे। युआन–च्वांग ने लिखा है कि महासांघिकों का अपना धर्मसूत्र पाठ था जिसे उन्होंने पाँच हिस्सों में विभाजित कर दिया था। सूत्र, विनय, अभिधर्म, धरणी और इतर।[12] ह्वेनसांग के अनुसार बौद्ध सम्प्रदायों में पाँच सम्प्रदाय अधिक विख्यात थे जिनमें महासांधिक सम्प्रदाय भी एक था।[13] इस प्रकार महासांघिकों की लोकोत्तर बुद्ध धारणा ने बुद्ध के प्रतीकों के स्थान पर उन्हें बुद्ध प्रतिमा निर्माण एवं उपासना को प्रेरित किया। प्रारम्भ में महासांधिक सम्प्रदाय का केन्द्र वैशाली था, जिसका विस्तार उत्तर तक फैला था। महासांधिक पूर्व में थे जिसकी पुष्टि फाहियान के विवरण से भी होती है। फाहियान ने पाटलिपुत्र में महासांधिक के विनय की पोथी देखी थी।[14] महासांधिक का प्रचार–प्रसार विशेषतः मगध एवं पूर्वी भारत में था। इस सम्प्रदाय के कुछ लोग सिन्धु एवं लाट प्रदेशों में भी निवास करते थे। मथुरा के सिंहस्तम्भ शीर्ष अभिलेख से ज्ञात होता है कि महासांधिकों का विस्तार मथुरा के क्षेषों में भी था।[15] ईसा की प्रथम शताब्दी में महासांधिक सम्प्रदाय के अन्तर्गत बौद्ध धर्म का अत्यधिक विकास हुआ। अमरावती और नागार्जुनी–कोण्डा के लेखों में महासांधिक सम्प्रदाय की प्रत्येक शाखाओं का वर्णन प्राप्त होता है।

महासांधिक सम्प्रदाय के उपशाखाओं का संक्षिप्त

परिचय – महासांधिक और उस की सभी उपशाखाओं के प्रमुख सिद्धान्त कथावस्तु, महावस्तु, वसुमिष, भव्य और विनीतदेव की रचनाओं में उल्लिखित है।[16] एकव्यावहारिक–परमार्थ के अनुसार एकव्यवहारिक सम्प्रदाय में सब धर्म संसार और निर्वाण लोकधर्म और लोकोत्तर धर्मप्रज्ञप्तिमाष एवं अवस्तु माष माने जाते थे।[17] बुद्ध अपनी मानसिक चेतना के द्वारा एक क्षण में ही सभी धर्मों के ज्ञान से परिचित थे। इस प्रकार के मत का प्रतिपादन एवं सभी धर्मों से अभेद व्यवहार रखने के कारण इस सम्प्रदाय को एकव्यवहारिक मत से सम्बोधित किया जाता है।

चैत्यवादी–चैत्यवादी शाखा का आरम्भ कर्त्ता महादेव नामक भिक्षु को माना जाता है। ये सम्प्रदाय चैत्य, शैल एवं स्तूप की पूजा करते थे जिस कारण इनका नाम चैत्यवादी पड़ा। चैत्यशाखा आन्ध्र क्षेष में निवास करते थे इस कारण इनको आन्ध्रक नाम से भी सम्बोधित करते थे। चीनी ग्रन्थों एवं कथावस्तु में भी इनका उल्लेख प्राप्त होता है।18 साथ ही इनका उल्लेख अमरावती एवं नागार्जुनकोण्डा लेखों में भी प्राप्त होता है।[19]

गोकुलिकी(कुक्कुटिक)– इस शाखा का कौक्कुटिक, कोक्कुलिक अथवा गोकुलिक नाम से बौद्ध ग्रन्थों में उल्लेख प्राप्त होता है। कुक्कुल का अर्थ राख होता है, एवं 1 कथा के कारण उन्हें कौक्कुलिक कहा गया है। [20] महासांघिकों की यह शाखा अभिघर्म्मपिटक को ही बुद्ध उपदेश स्वीकार करते हैं। गोकुलिक सम्प्रदाय विनय अनुशासन (नियम) को निर्वाण मार्ग का बाधक समझते हैं।

बुश्रुतीय–इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक बहुश्रुतीय आचार्य थे।[21] हरिवर्मन् का सत्यसिद्धिशास्ष बहुश्रुतीय सम्प्रदाय से सम्बन्धित पाँच पिटकों का उल्लेख प्राप्त होता है– सूष, विनय, अभिधर्म, संयुक्त एवं अभिधर्म।[22] इस सम्प्रदाय का मानना है कि व्यक्ति को मोक्ष (परमपद) प्राप्ति के लिए पाँच वस्तुएँ स्वीकार की गयी है– अनित्यता, दुःख, शून्यता, अनात्म्य और निर्वाण। आगे चलकर बहुश्रुतीय से प्रज्ञप्तिवादी सम्प्रदाय का उद्भव होता है।

प्रज्ञप्तिवादी– यह सम्प्रदाय बुद्ध को साधारण मानव न मानकर लोकोत्तोरवादी स्वीकार करते हैं जिस कारण इस सम्प्रदाय को लोकोत्तरवादी भी कहा जाता है।[23] इस सम्प्रदाय के अनुयायियों ने बुद्ध की मानवेत्तर लीलाओं के सन्दर्भ मे नये–नये सूषों की रचनायें भी की थी।[24] इनके मतानुसार आध्यात्मिक प्रगति के क्रम में बोधिचित्तोत्पाद के अन्तर्गत बोधिसत्व बोधिलाभ के लिए अग्रगामी होता है। वह क्रमशः दस भूमिओं पर आरूढ़ होता हुआ इस लक्ष्य को प्राप्त करता है।[25] ये सम्प्रदाय परमार्थिक कर्मों के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं। ये शून्यता को ही परमार्थ मानते हैं।

महायान– महासांधिकों ने जिस प्रकार से मानवीय बुद्ध को अलौकिक रूप में प्रतिपादित किया है। आगे चलकर यही सिद्धान्त महायान सम्प्रदाय के रूप में परिणत हुआ। चतुर्थ संगीति के उपरान्त सबका कल्याण करने के पश्चात् निर्वाण को प्राप्त करने तथा बोधिसत्व की कल्पना ने बुद्धयान पर विशेष बल दिया गया जो संसार में अत्यधिक प्रसिद्ध हुआ। यही दार्शनिक भाव ग्रहण करने वाला बौद्ध सम्प्रदाय महायान के नाम से अभिहित किया गया।[26] महायान के अन्य नाम भी प्राप्त होते हैं– एकयान, अग्रयान, बोधिसत्वयान तथा बुद्धयान। महायान का अर्थ होता है प्रशस्त मार्ग, इसके द्वारा निर्देशित मार्ग पर प्रत्येक व्यक्ति चलकर अपने लक्ष्य को प्राप्त करता है। इस सम्प्रदाय को सहजयान भी कहा जाता है क्योंकि व्यक्ति इस के सिद्धान्तों को अत्यन्त सुगमता से अपना सकता है।[27] महायान का उदय दक्षिण भारत में माना जाता है, परन्तु इस का विस्तार

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-I, Issues-16 YEAR- June. -2020

पूर्वी भारत में हुआ।[28] महायान सम्प्रदाय की सबसे बड़ी विशेषता बोधिसत्व की कल्पना को साकार रूप प्रदान करना था। महायान मत के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का परम लक्ष्य बोधिसत्व अवस्था की प्राप्ति है। बोधिसत्व का अर्थ है बोधि अर्थात् ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा रखने वाला व्यक्ति। परन्तु महायान में बोधिसत्व का अर्थ वह व्यक्ति जो बोधिसत्व की प्राप्ति करता है तथा लोक कल्याण में संलग्न रहता है।[29] महायान सम्प्रदाय में बोधिसत्व की कल्पना ने आगे चलकर बुद्ध प्रतिमा निर्माण करने का मार्ग प्रशस्त किया गया। जब समस्त भारतीय सम्प्रदाय भक्ति की लहर में ओत–प्रोत हो रहे थे तब बौद्ध धर्म भी इनसे अछूता न रह सका। भक्त के लिए बुद्ध का देवता का मूर्त रूप नितान्त आवश्यक हो गया था।[30] महायान में बोधिसत्व को करुणा एवं प्रेम का सागर माना गया है इसलिए प्रत्येक व्यक्ति अपने स्नेह, निष्ठा एवं शुद्ध व्यवहार के द्वारा ईश्वर की करुणा का पाष बन सकता है। महायान में ईश्वर की भक्ति एवं पूजा के साथ–साथ बुद्ध के अनेक अवतारों की कल्पना को भी साकार रूप प्रदान किया गया था। बुद्ध के अवतारों का विस्तृत उल्लेख जातक कथाओं में प्राप्त होता है।[31] महायानियों ने आत्मा के अस्तित्व को भी स्वीकारा है उनका मानना है कि आत्मा के बिना मनुष्य को निर्वाण प्राप्त नहीं हो सकता।

महायान विचारधारा को समझने के लिए कुछ सूत्रों का उल्लेख भी आवश्यक है :–

गुहासमाजतन्ष– इसकी रचना तीसरी शती ई0 में बौद्ध आचार्य असंग द्वारा की गयी।[32] इसको प्रारम्भिक बौद्धतन्षग्रन्थ के रूप में मान्यता प्राप्त हुयी है। इस ग्रन्थ में साधना सम्बन्धी विवरण प्राप्त होता है। बौद्ध धर्म में शक्ति की प्रधानता, सिद्धियाँ और बुद्धत्व प्राप्ति सम्बन्धी विवेचना प्रस्तुत की गयी है।[33] यह प्रथम ऐसा ग्रन्थ है जिसमें ध्यानीबुद्धों की कल्पना का उल्लेख प्राप्त होता है।

महायान–श्रद्धापदशास्त्र– इस ग्रन्थ का सम्बन्ध सम्भवतः संस्कृत कवि अश्वघोष से माना गया है। इस ग्रन्थ के माध्यम से लोगों को महायान सम्प्रदाय के प्रति विष्वासों को जगाना था।[34] इस ग्रन्थ को महायान का जागरण भी माना जाता है। इसमें महायान सम्प्रदाय के मूल सिद्धान्तों का अपेक्षाकृत संक्षिप्त लेकिन प्रभावशाली वर्णन प्राप्त होता है। इस ग्रन्थ में षिकाय सिद्धान्त का भी स्पष्टीकरण प्राप्त होता है।

शिकाय सिद्धान्त–पारमितानय एवं मन्त्रनय इन दोनों ही मार्गों के द्वारा बुद्धत्व फल प्राप्त होती है।[35] वैपुल्य सूषों में भी शिकाय को फल रूपी काया के रूप में स्वीकारा गया है। शिकाय शब्द से तात्पर्य बुद्ध के तीन रूप से है।

(1) निर्माणकाय–बुद्ध को मानव रूप में प्रतिस्थापित करना।
(2) संभोगकाय– महासांधिकों द्वारा बुद्ध को अलौकिकस्वरूप प्रदान करना तथा विभिन्न देव प्रतिमाओं के रूप में स्थापित करना।
(3)धर्मकाय– इसके अन्तर्गत शील, समाधि, प्रज्ञा, विमुक्ति एवं विमुक्ति ज्ञान दर्शन नामक पाँच स्कन्ध संग्रहीत हैं।[36]

सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र– महायान सम्प्रदाय के विविध आकार के परिचय एवं भक्तिभाव के निमित्त इस सूष का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। पुण्डरीक (श्वेतकमल) पविषता तथा पूर्णता का प्रतीक माना जाता है।[37] इस आधार पर **संदर्भ–**पुण्डरीक नाम सार्थक माना गया है। इस ग्रन्थ में महायान के सिद्धान्तों को प्रतिपादित किया गया है। इसमें बुद्ध को अवतार मानकर बुद्ध एवं बोधिसत्व की पूजा की मान्यता को स्वीकारा गया है। चीन तथा जापान में **सद्धर्म–**पुण्डरीक महायान से सम्बन्धित महान ग्रन्थ के रूप में अपनाया गया है।

प्रज्ञापारमितासूत्र– महायान विचारों के अन्तर्गत इस ग्रन्थ को विशिष्ट स्थान प्राप्त होता है। जहाँ अन्य सूषों में बुद्ध एवं बोधिसत्व की प्रशंसा का संदर्भ प्राप्त होता है, लेकिन प्रज्ञापारमितासूष बौद्धधर्म के दार्शनिक सिद्धान्त (शून्यता) पर आधारित है। बौद्ध दर्शन के अन्तर्गत शून्यता का सिद्धान्त नागार्जुन द्वारा प्रतिपादित किया गया है। प्रज्ञापारमिता का अर्थ है सबसे उच्च ज्ञान (शून्यता) है। संसार के समस्त धर्म (पदार्थ) प्रतिबिम्ब माष है, उनकी वास्तव सत्ता नहीं है। यही शून्यता का ज्ञान ही प्रज्ञा का महान उत्कर्ष है।[38]

धर्मसंगीति– सुखावतीव्यूह और कारण्डव्यूह सूषों में अवलोकितेश्वर की प्रशस्ति अंकित की गयी है।[39] कारण्डव्यूह में अवलोकितेश्वर की महाकरुणा के अनेक वर्णन है।[40] अवलोकितेश्वर को करुणा के प्रतीक के साथ–साथ सृष्टि के निर्माणकर्ता के रूप में भी स्वीकार किया गया है। अवलोतिकेश्वर में हिन्दू देवता शिव के समान विविध शक्तियों की कल्पना की गयी है।

सुखावतीव्यूह– सुखावतीव्यूह सूत्र में बुद्ध अमिताभ के सुखावती लोकों का वर्णन है। बुद्ध अमिताभ को अभितायु कहा गया है।[41] इस ग्रन्थ में ऐसे लोक का उल्लेख है जहाँ सिर्फ दिन है, राषि का कोई अस्तित्व नहीं है। यहाँ जो भी सत्य है वह पाप से सर्वदा विरत है, और प्रज्ञा से संयुक्त है।[42]

वैपुल्यसूत्र– बौद्धतन्त्र में वैपुल्यसूत्रों का अत्यन्त महत्व है। इनमें एक ओर पूर्व प्रचलित मुख्यतः महासांधिकों द्वारा स्वीकृत, मंत्रायन विचारों का सम्यक् प्रतिफल परिलक्षित है।[43] बौद्ध धर्म में तन्त्र एवं मन्त्रों का आविर्भाव व

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-I, Issues-16 YEAR- June. -2020

महासांधिक सम्प्रदाय में हुआ जिसका विकसित स्वरूप महायान में देखने को मिलता है। इसी कड़ी में आगे चलकर मन्त्रयान एवं वज्रयान सम्प्रदाय का प्रादुर्भाव हुआ।

महायान सम्प्रदाय का विभिन्न क्षेषों में प्रचार–प्रसार प्रारम्भ में नालन्दा बौद्ध धर्म का महत्वपूर्ण केन्द्र था जहाँ बौद्ध एवं ब्राह्मण दर्शनों का अध्ययन अध्यापन किया जाता था। ह्वुई–ली के अनुसार नालन्दा में भिक्षु एवं अन्य निवासियों की संख्या 10,000 थी, और वे सब महायान की शिक्षा ग्रहण करते थे।[44] यहाँ कई विषयों का अध्ययन किये जाते थे जिनमें वेद–वेदांग हेतुविद्या, शब्दविद्या, चिकित्साविद्या, अथर्ववेद (मंषविद्या), सांख्य आदि थे।[45] आचार्य नागार्जुन ने श्री नालन्दा में 500 महायान धर्म कथिकों की वर्षा तक रासायनिक प्रयोग द्वारा जीविका का प्रबन्ध किया।[46] गुजरात काठियावाड़ और महाराष्ट्र में यत्र–तत्र फैले गुहा मन्दिरों के अवशेषों से यह पता चलता है कि अनेक शताब्दियों तक यहाँ बौद्ध धर्म का प्रचार–प्रसार था।[47] पहले यहाँ हीनयान का प्रभाव था, तत्पश्चात् महायान परम्परा का विकास हुआ। सम्पूर्ण पश्चिमी भारत के जूनागढ़, भाजा, कार्ले, कान्हेरी बाघ, पितलखोरा, जुन्नार तथा नासिक[48] इन क्षेषों में बौद्ध धर्म के महायान सम्प्रदाय का अधिक प्रचलन था। अजन्ता के समान ही एलोरा भी बौद्धों का बहुत बड़ा केन्द्र था। पैंतीस गुहाओं में से एलोरा की 12वीं गुहा अजन्ता के समकालीन है जिन पर महायान प्रभाव पूर्णतः लक्षित होता है।[49] मथुरा में सर्वप्रथम बुद्ध एवं बोधिसत्व की मूर्तियों का निर्माण प्रारम्भ हुआ। यह सर्वविदित है कि बौद्ध धर्म में प्रतिमा निर्माण परम्परा बौद्ध धर्म के महायान सम्प्रदाय की देन है। मथुरा से प्राप्त बुद्ध और बोधिसत्व की प्रारम्भिक प्रतिमाएँ विशालकाय मिली है। इस प्रकार मथुरा में भक्ति प्रधान महायान सम्प्रदाय प्रबल हो उठा।[50] मथुरा में निर्मित बुद्ध एवं बोधिसत्व प्रतिमाओं को भारत के विभिन्न क्षेषों में पहुँचाया जाता था। भारत में भिन्न–भिन्न कालखण्डों में भ्रमण करने आने वाले चीनी याषियों ने भी बौद्ध धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों का उल्लेख अपने याषा वृत्तान्तों में किया है। फाहियान ने गोमती में संघाराम का उल्लेख करता है जहाँ 3000 महायान सम्प्रदाय के भिक्षु निवास करते थे।[51] ह्वेनसांग ने भी अपने याषा के दौरान अनेक भारतीय क्षेषों का भ्रमण किया था। कपिसा लगभग 100 संघाराम एवं 6000 संन्यासी, उद्यान, तक्षशिला एवं सिंहपुर के संघाराम में 100 संन्यासी निवास करते थे ये सभी भिक्षु महायान सम्प्रदाय के थे।[52] पाल लेखों में महायान सम्प्रदाय का उल्लेख प्राप्त होता है। महीपाल प्रथम के नालन्दा लेख में बालादित्य के द्वारा मन्दिर में प्रतिमा के दान का उल्लेख है।[53] इस लेख में उसे महायान अनुयायी बतलाया गया है। इस प्रकार महायान अपनी सरल एवं सुगम विचारधारा के कारण न सिर्फ भारत में बल्कि विश्व के देशों में बौद्ध धर्म का अस्तित्व बनाये रखा।

निष्कर्ष– बौद्ध भिक्षुओं ने मूल बौद्ध धर्म में कुछ परिवर्तन के साथ नये मत का प्रतिपादन महासांधिक समप्रदाय के रूप में परिणित किया, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं थी, क्योंकि बुद्ध स्वयं मध्यम मार्ग का अनुसरण करते थे। बुद्ध का यह उपदेश प्रत्येक व्यक्ति के लिए था कि जब व्यक्ति को कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़े तो उसे मध्यम मार्ग का अनुसरण करना चाहिए। बुद्ध के जन्म के समय उनके 32 लक्षणों के भविष्यवाणी के अनुसार ही बुद्ध को रूपकाय के कारण अलौकिक मानकर बुद्ध एवं बोधिसत्व की कल्पना एवं बुद्ध प्रतिमा निर्माण के कल्पना को महायानियों ने साकार किया था। पालि ग्रन्थों में बुद्ध द्वारा ऋृद्धि प्रदर्शन का उल्लेख प्राप्त होता है। दीघनिकाय के केवट सुत्त में गान्धारी विद्या का सन्दर्भ प्राप्त होता है।[54] इससे यह तात्पर्य है कि बौद्ध भिक्षु अनेक प्रकार के श्रृद्धिबल का प्रदर्शन करते थे। ब्रह्मजाल सुत्त में विविध प्रकार के मंषों का उल्लेख प्राप्त होता है।[55] इस प्रकार तान्त्रिक साधना के बीज बौद्ध धर्म में आरम्भिक काल से ही पनपने तथा विकसित हो रहे थे। समाधिराज, सद्धर्मपुण्डरीक, लंकावतार, गण्डव्यूह एवं वैपुल्यसूत्रों में धारणियों को विशेष महत्व दिया गया और इन्हें मोक्ष प्राप्ति की दृष्टि से यथेष्ट माना गया है।[56] महासांधिकों की कृतियों में वर्णित धारणीपिटक, विद्याधरपिटक आदि वैपुल्यसूत्रों में क्रमशः विकसित होकर बौद्ध तन्त्र में मंत्रों के रूप में अंगीकार किये गये।[57] धारणियों के उपयोग के आधार पर ही महायान के द्विविध विभाजन की प्रवृत्ति विकसित हुयी। इस प्रकार वैपुल्यसूत्रों के अन्तर्गत धारणियों का सन्निवेश उनके आधार पर पारमितानय से मन्त्रनय का पृथक्करण और पुनः मन्त्रनय से वज्रयान के नये प्रस्थान का विकास एक क्रमिक विकास का सूचक है।[58]

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिन्हा, हरेन्द्रप्रसाद, भारतीय दर्शन की रूपरेखा, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, 1963, पृ0 121
2. पूर्वोद्धृ, पृ0 136 ।
3. उपाध्याय बलदेव, बौद्ध मीमांसा, चौखम्भा विद्याभवन, बनारस, 1954, पृ0 46
4. पूर्वोद्धृ, पृ0 47।
5. Conze, Edward, Buddhist thought in India, Munshiram Manoharlal, New Delhi, 2002, pg. 195.

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-I, Issues-16 YEAR- June. -2020

6. बापट, पी0वी0, बौद्ध धर्म के 2500 वर्ष, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 1956, पृ0 85।
7. बौद्ध मीमांसा, पृ0 119।
8. पाण्डेय, गोविन्दचन्द्र, बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1963, पृ0 285।
9. उपाध्याय, बलदेव, पृ0 119।
10. पूर्वोद्धृ, पृ0 120।
11. पाण्डेय, गोविन्दचन्द्र, पृ0 287।
12. बापट, पृ0 86।
13. ह्वेनसांग की भारत याषा, ठाकुरप्रसाद शर्मा, आदर्श हिन्दी पुस्तकालय, इलाहाबाद, 1972, पृ0 85 ।
14. नरेन्द्रदेव, बौद्ध धर्म दर्शन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1956, पृ0 36।
15. गुप्त, परमेश्वरीलाल, प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख प्रथमभाग, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2011, पृ0 131।
16. बापट, पूर्वोद्धृ, पृ0 89।
17. पाण्डेय, गोविन्दचन्द्र, पृ0 290।
18. पूर्वोद्धृ, पृ0 292।
19. बापट, पूर्वोद्धृ, पृ0 93।
20. पाण्डेय, गोविन्दचन्द्र, पूर्वोद्धृ, पृ0 291।
21. सिंह, बद्रीनाथ, बौद्ध धर्म एवं दर्शन, आशा प्रकाशक, वाराणसी, 1986, पृ0 49।
22. पाण्डेय, गोविन्दचन्द्र, पूर्वोद्धृ, पृ0 291।
23. सिंह, कुमार विनय, बौद्ध तान्षिक देवप्रतिमाओं का अध्ययन, कला प्रकाशन, वाराणसी, 2007, पृ0 37।
24. पूर्वोद्धृ, पृ0 38।
25. सिंह, माधुरी, आर्यमंजुश्रीमूलकल्प : बौद्ध तन्ष की उद्भावात्मकगवेषणा, कला प्रकाशन, वाराणसी, 2011, पृ0 49।
26. सिंह, कुमार विनय, पूर्वोद्धृ, पृ0 41।
27. सिन्हा, हरेन्द्र प्रसाद, पूर्वोद्धृ, पृ0 138।
28. उपाध्याय, भरत सिंह, बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन, प्रथम भाग, पृ0 556।
29. सिन्हा, हरेन्द्र प्रसाद, पूर्वोद्धृ, पृ0 138–139।
30. श्रीवास्तव, बृजभूषण, प्राचीन भारतीय प्रतिभा–विज्ञान एवं मूर्तिकला, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2007, पृ0 180।
31. जतक–अट्ठकथा प्रथम भाग,(अनु) भदन्त आनन्द कौसल्यायन, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 2006,पृ0 25।
32. सिंह, विनय कुमार, पूर्वोद्धृ, पृ0 50।
33. पूर्वोद्धृ, पृ0 50।
34. Gupta, Mohini, Gupta, V.P., and Kapoor, A.N., An Encyclopaedic Dictionary of Ancient In dian History Radha Publications, New Delhi, 2003, p. 38
35. सिंह, माधुरी, पूर्वोद्धृ, 54।
36. पूर्वोद्धृ, पृ0 55।
37. उपाध्याय, बलदेव, पूर्वोद्धृ, पृ0 126।
38. पूर्वोद्धृ, पृ0 128।
39. सिंह, माधुरी, पूर्वोद्धृ, पृ0 60।
40. नरेन्द्रदेव, पूर्वोद्धृ, पृ0 150।
41. पूर्वोद्धृ, पृ0 150।
42. पूर्वोद्धृ, पृ0 151।
43. सिंह, माधुरी, पूर्वोद्धृ, पृ0 41।
44. बापट, पूर्वोद्धृ, पृ0 156।
45. पूर्वोद्धृ, पृ0 157।
46. तारानाथ, लामा, भारत में बौद्ध धर्म का इतिहास, काशी प्रसाद जायसवाल शोध संस्थान, पटना, 1941, पृ0 41।
47. कुमार, धीरेन्द्र, भारतीय बौद्ध केन्द्र, जानकी प्रकाशन, पटना, 2003, पृ0 143।
48. पूर्वोद्धृ, पृ0 144।
49. पूर्वोद्धृ, पृ0 145।
50. मथुरा, वाजपेयी, कृष्णदत्त, शिक्षा विभाग, उत्तरप्रदेश, लखनऊ, 1955, पृ0 34।
51. Less, James, A record of Buddhistic Kingdoms, Munshiram ManoharLal, New Delhi, 1998, p. 17.
52. ह्वेनसांग की भारत याषा, (अनु0) ठाकुरप्रसाद शर्मा, आदर्श हिन्दी पुस्तकालय, इलाहाबाद, 1972, पृ0 38, 85, 96।
53. पण्डा, नीरजा, पाल अभिलेखों में प्रतिपादित बौद्ध धर्म, पेनमैन प्रकाशन, दिल्ली, 1995, पृ0 81–82
54. दीघनिकाय केवटसुत्त (अनु) राहुल सांकृत्यायन एवं जगदीष काष्यप, महाबोधि सभा, सारनाथ, वाराणसी, 1936, पृ0 78 से 80
55. दीघनिकाय ब्रह्मजालसुत्त, पूर्वोद्धृ, पृ0 1 से 14
56. आर्यमंजूश्रीमूलकल्प, पूर्वोद्धृ, पृ0 41
57. आर्यमंजूश्रीमूलकल्प, पूर्वोद्धृ, पृ0 57
58. आर्यमंजूश्रीमूलकल्प, पूर्वोद्धृ, पृ0 57

*****